तारन-त्रिवेणी

मूल लेखक

परम पूज्य आचार्य

श्रीमद्तारणतरण स्वामी जी महाराज

प्रस्तावना लेखक

हीरालालजी जैन एम. ए., एल-एल. बी.

प्रोफेसर,

किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती

पद्यानुवादक

रत्नकरंडश्रावकाचार व भक्तामर के पद्यानुवादक,

अमृतलाल "चंचल"

तारन-त्रिवेणी पर दो शब्द

यदि साहित्यिक प्रलय का समय आजावे और मुझ से कहा जाय कि तुम भारतीय साहित्य मे से केवल उस साहित्य को बचा सकते हो जो तुम उसमें सर्वोत्कृष्ट और सदानूतन रहने वाला समझते हो, तो मै बिना किसी संकोच के उस साहित्य की रक्षा करने का प्रयत्न करूंगा जो अध्यातम से संबध रखता है, जिसमे शाश्वत तत्त्वों की खोज की गई है, जहां मनुष्य की दृष्टि बहिर्जगत् के अन्तस्तल और अन्तर्जगत् के विकास पर डाली गई है तथा जहा सुख और शान्ति का साधन पराधीन न रखकर स्वाधीन दिखलाया गया है। प्राचीनतम साहित्य मे वैदिककाल के उपनिषद् ग्रंथ इसी कोटि के है और विदेह राजर्षि जनक उन्ही कर्मयोगी महात्माओ मे से एक बतलाये है। मध्यकालीन अनेक सन्त महात्मा ऐसे हुए है जिन्होने अपनी वाणी मे आधिभौतिक जगत् का आन्तरिक दर्शन कराने तथा सच्चा सुख बतलाने का प्रयत्न किया है। उत्तर भारत के कबीर, नानक दादू, पलटू आदि तथा महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम, मोरोपंत आदि सन्तो ने अपने अपने समय मे, अपने अपने प्रदेश की जनता का ध्यान थोथे क्रियाकांड और अंधविश्वास से हटाकर सच्ची शुद्ध भावना और हृदय की पवित्रता की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। बौद्धो के

तारन-त्रिवेणी पर दो शब्द

यदि साहित्यिक प्रलय का समय आजावे और मुझ से कहा जाय कि तुम भारतीय साहित्य में से केवल उस साहित्य को बचा सकते हो जो तुम उसमें सर्वोत्कृष्ट और सदानूतन रहने वाला समझते हो, तो मैं बिना किसी संकोच के उस साहित्य की रक्षा करने का प्रयत्न करूंगा जो अध्यात्म से संबध रखता है, जिसमे शाश्वत तत्त्वों की खोज की गई है, जहां मनुष्य की दृष्टि बहिर्जगत् के अन्तस्तल और अन्तर्जगत् के विकास पर डाली गई है तथा जहां सुख और शान्ति का साधन पराधीन न रखकर स्वाधीन दिखलाया गया है। प्राचीनतम साहित्य मे वैदिककाल के उपनिषद् ग्रंथ इसी कोटि के है और विदेह राजर्षि जनक उन्ही कर्मयोगी महात्माओं मे से एक बतलाये है। मध्य-कालीन अनेक सन्त महात्मा ऐसे हुए है जिन्होंने अपनी बानी मे आधिभौतिक जगत् का आन्तरिक दर्शन कराने तथा सच्चा सुख बतलाने का प्रयत्न किया है। उत्तर भारत के कबीर, नानक दादू, पलटू आदि तथा महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम, मोरोपत आदि संतों ने अपने अपने समय मे, अपने अपने प्रदेश की जनता का ध्यान थोथे क्रियाकांड और अधविश्वास से हटाकर सच्ची शुद्ध भावना और हृदय की पवित्रता की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। बौद्धों के

भीतर भी महात्मा बुद्ध के पश्चात् काण्होपद, सरह, डोम्बी, गुण्डारी आदि अनेक ऐसे सत हुए है जिनका सम्प्रदाय विश्व व्यापक कहा जा सकता है।

जैन धर्म मे अध्यात्म की महिमा विशेष है। आत्मा के सबध मे जितना चिन्तन और अनुसधान यहां किया गया है उतना किसी भी अन्य धर्म के भीतर किया गया नही पाया जाता। जैन धर्म मूलत: भावनाप्रधान है। सुख दुख, पुण्य पाप, अच्छाई बुराई का सबध यहां बाह्य अवस्था से नहीं किन्तु अन्तर्वृत्ति के आधीन बतलाया गया है। इस धर्म मे आध्यात्मिक योगियो की सख्या बहुत अधिक है, उनमे श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम सबसे प्रथम याद आता है। उनके अनेक ग्रंथो मे आत्मा से 'परमात्मा बनने का मार्ग दर्शाया गया है। उनकी परम्परा योगचन्द्र व रामसिंह जैसे मुनियो ने अत्यन्त निर्भीकताने कायम रखी है, जिनके परमात्मप्रकाश व पाहुडदोहा नामक ग्रंथ जैन साहित्य की अनुपम निधि है। उनका उपदेश है कि सुख के लिये बाहर पदार्थों पर अवलम्बित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योकि उसमे केवल दुख और सन्ताप ही बढेगा। सच्चा सुख इन्द्रियो पर विजय और आत्मध्यान मे ही मिलता है। यह सुख इंद्रियसुखाभासो के समान क्षणभगुर नहीं है, किन्तु चिरस्थायी और कल्याणकारी है। आत्मा की शुद्धि

के लिये न तीर्थजल की आवश्यकता है, न नाना प्रकार वेष धारण करने की। आवश्यकता है केवल राग और द्वेष की प्रवृत्तियों को रोककर आत्मानुभव की। मूंडमुडाने मे, केश लौंच करने मे या नग्न होने मे ही कोई सच्चा योगी और मुनि नही कहा जा सकता। योगी तो तभी होगा जब समस्त अतरग परिग्रह छूट जावें और मन आत्मध्यान मे लवलीन हो जावे। देवदर्शन के लिये पाषाण के बडे बडे मन्दिर बनवाने तथा तीर्थों तीर्थ भटकने की अपेक्षा अपने ही शरीर के भीतर निवास करने वाले देव का दर्शन करना अधिक सुखप्रद और कल्याणकारी है। आत्म ज्ञान से हीन क्रियाकाड कण रहित तुष और पयाल कूटने के समान निष्फल है। ऐसे व्यक्ति को न इन्द्रिय सुख ही मिलता और न मोक्ष का मार्ग ही।

इसी प्रकार के एक बड़े महात्मा सोलहवीं शताब्दि मे बुंदेलखड में हुए है, जिनका नाम है तरनतारन स्वामी। आत्ममनन और तद्विषयक ग्रथ रचना के अतिरिक्त इनका प्रभाव इसमे भी जाना जाता है कि उनकी विचार धारा को मानने वाला एक सम्प्रदाय जैन समाज के भीतर आज तक भी कायम है जो 'तारनपथी' समाज के नाम से प्रसिद्ध है। यह समाज मूर्ति-पूजा को नही मानता, वह 'समय' अर्थात् सिद्धान्त व तत्त्वज्ञान की पूजा करता है।

किन्तु दुर्भाग्यतः बहुत समय तक तरनतारन स्वामी के रचे हुए ग्रंथों की प्रसिद्धि नहीं हुई, न उनका संशोधन व प्रकाशन हुआ। प्रत्युत, उक्त समाज में उनके ग्रंथों का गुप्त रखने की प्रवृत्ति सी हो गई थी। पर कोई भी समाज, चाहे वह कितना ही कट्टर क्यों न हो, समय की मांग और उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। समय एक ऐसा व्यक्ति खड़ा कर देता है जो उस कट्टरता के दुर्ग को जीतकर ज्ञान-स्वातन्त्र्य की धारा बहा देता है। गत आठ दश वर्षों से जैन-धर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी का ध्यान तरनतारन साहित्य की ओर गया है, जिसके फलस्वरूप उक्त समाज के उन्नतिशील सज्जनों के सहयोग द्वारा वे उस साहित्य की अनेक निधियों को प्रकाश मे लाने मे सफल हुए है। ब्रह्मचारी जी ने अबतक कोई पांच सात ग्रंथ इस साहित्य के, मूल, भावानुवाद व विशेषार्थ के सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराये हैं। इन ग्रंथों की भावभगी बहुत कुछ अटपटी है। जैन धर्म के मूलसिद्धान्त और अध्यात्मवाद के प्रधान तत्त्व तो इसमे स्पष्ट झलकते हैं, पर कर्ता की रचना शैली किसी एक सांचे मे ढली और एक धारा मे सीमित नहीं है। यह स्पष्ट है कि कवि किसी सीमा को बांधकर अपने विचार व्यक्त नही कर रहे है, किन्तु विचारो का उद्रेक जिस ओर जिस प्रकार जब चला गया, तब तैसा उन्हे ग्रंथित करके रख दिया। और इस कार्य में

उन्होने जिस भाषा का अवलम्बन लिया है वह तो बिलकुल उनकी निजी चीज है। वह भाषा के समस्त देश-प्रदेश-भेदो व काल-भेदों के परे है। न वह संस्कृत है, न कोई प्राकृत-अपभ्रंश है और न कोई प्रचलित देशी भाषा। मेरी समझ मे उसे 'तरनतारन भाषा' ही कहना ठीक होगा जिसका परिचित उन ग्रंथों के अवलोकन से ही पाया जा सकता है।

इस साहित्य के तीन छोटे छोटे ग्रंथ हैं— पंडित पूजा, मालारोहण और कमल बत्तीसी। इनमे शुद्ध भावना, शुद्धाचरण और विशुद्ध ज्ञान पर जोर दिया गया है। पर जो गहन और मनोहर भाव उनमे भरे हैं उनका उक्त अटपटी शैली के कारण जन साधारण द्वारा पूरा लाभ उठाया जाना कठिन है। उनके ऐसे रूपान्तर की जरूरत थी जो सरल, सुस्पष्ट और हृदयग्राही हो। ऐसा रूपान्तर मुझे प्रिय अमृतलाल "चचल" के पद्यानुवाद में देखने को मिला। चंचल की कविता मूल के भाव की रक्षा करती हुई अत्यन्त सुन्दर और लोकरुचि के अनुकूल है। मुझे आशा और बिश्वास है कि इस कविता द्वारा तरनतारन स्वामी के उपदेशों का अच्छा प्रचार होगा। यह 'तारन-त्रिवेणी' जनता का खूब कल्याण करेगी।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
२०-२-४०

हीरालाल जैन

अपनी बात

'तारन-त्रिवेणी' सोलहवीं शताब्दी में हुए, एक पहुँचे हुए जैन संत की तीन महान कृतियों का (पंडितपूजा, मालारोहण, कमल बत्तीसी) एक परिवर्तित सामूहिक नाम है। इन ग्रंथों में जहां कहीं भी कवि की दृष्टि दौड़ी है, वहीं उन्हे आध्यात्मिकता का दीदार हुआ है। आत्मा ही देव है, आत्मा ही शास्त्र है, आत्मा ही गुरु है, आत्मा हो तीर्थ है और आत्मा ही धर्म है। कवियित्री मीरा के समान, इन ग्रन्थों में, यदि कोई भावुक देखे तो वे एक तरह से गाते-से दिखाई पड़ते है—

"मेरो तो आतम दयाल दूसरा न कोई रे।
जाके सिर ज्ञान-मुकुट मेरो नाथ सोई रे।..."

साम्प्रदायिकता या दीगर भेद भाव से आपकी कृतियें एक तरह से सर्वथा अछूती हैं और अगर गुरुदेव के अनुयायीगण, आज तक उनके महान ग्रंथों को आलमारियों में कैद न रख, विद्वानों को इस बात का अवसर देते कि वे देखते कि उन ग्रंथों में परम पूज्य स्वामी जी समार के नाम क्या वसीयत कर गये हैं- और उन्होंने किस ऐसे सर्वप्रिय और चुम्बकसे आकर्षक मार्ग को अखतियार किया था कि जिससे न कुछ समय में ही, जाति पांति के भेद भाव को छोड़कर उनके लगभग ५,५३००० शिष्य होगये थे, तो आज संसार का कल्याण हो जाता और स्वामी जी का नाम संसार के बच्चों बच्चों की ज़ुबान पर होता!

'तारन-त्रिवेणी' छप तो आज से, मैं समझता हूँ कि, करीब २-३ साल पहिले ही जाती, पर, 'समय पाय तरुवर फले, केतक सींचो नीर' झंझटे आती रहीं और वह समय आज आया जब कि मै उसे आप श्रीमानों के सम्मुख रखने में समर्थ हो सका। मै कोई पंडित नहीं, ज्ञानी नहीं ग्रंथकार नहीं, कुछ भी नहीं—थोड़ा सा भावुक अवश्य हूँ। गुरुदेव की भाषा मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र जी की वाणी के समान 'प्रेम लपेटी अटपटी' है। उसी प्रेम के समुद्र में यथाशक्ति डूबकर मैने जो कुछ भी पाया है, उसे ही लेकर मै आप लोगो के समक्ष प्रस्तुत हुआ हूँ।

समाजभूषण श्रीमान पूज्य मंत्री श्री गुलाबचंद जी ने अपने पिता धर्मरत्न स्वर्गीय श्री लालदास जी की व अपनी स्वर्गीया विदुषी मातेश्वरी जी की पुण्य स्मृति में, इस ग्रंथ की १००० प्रतियां प्रकाशित कराकर धर्मप्रेमी संसार को बिना मूल्य वितरण की है और मुझे अपने अनुवाद करने में अनेकानेक सहायताएं दी हैं, अतः मैं उनको, जैन समाज के माने हुए विद्वान, प्रोफेसर हीरालाल जी को, जिन्होंने कि इस ग्रंथ की प्रस्तावना लिखकर मुझ पर महान उपकार किया है तथा तारण-साहित्य के उद्धारक जैन-धर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी को, जिनकी हिन्दी टीका से मुझे अपने ग्रंथ के अनुवाद में बहुत ज़ादा मदद मिली है, हृदय से धन्यवाद देकर, आप लोगों से बिदा लेता हूँ।

जबलपुर
४ मार्च, ४०

अमृतलाल "चंचल"

उपहार
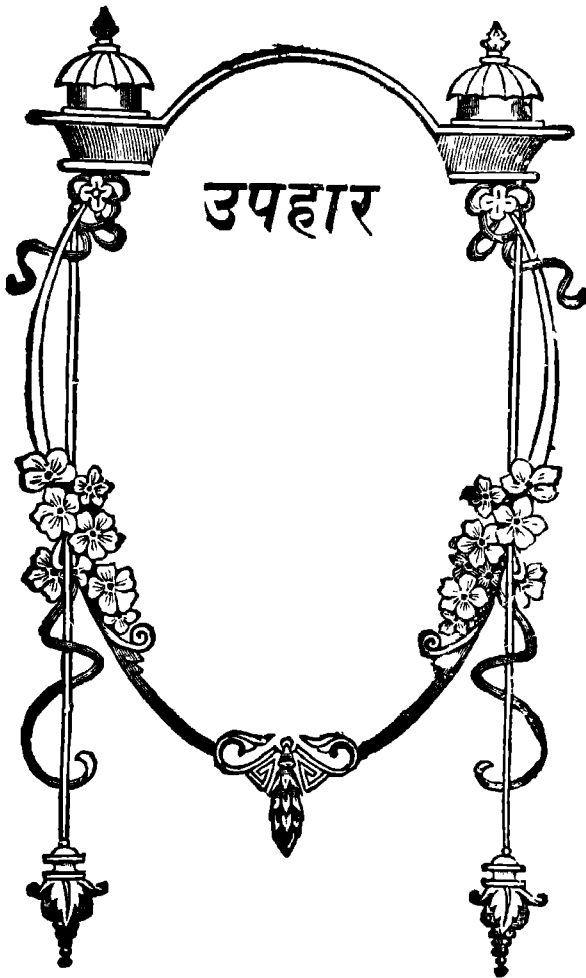
समर्पण

तारणस्वामी व जिनवाणी के अनन्यभक्त

धर्मरत्न,

स्वर्गीय श्रीमान पं० लालदासजी

के दूर पहुंचे हुए

कर-कमलों में

तारणतरण आचार्यजी के
आप भक्त महान थे।
प्रतिपल अधर से आपके
उनके निकलते गान थे।
उनके प्रसूनो पर न फिर
क्यों आपका अधिकार हो?
'तारन-त्रिवेणी' आपकी है,
आपको स्वीकार हो!

—चंचल

प्रथम धारा

आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुरु भाई !
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही,
तीर्थ आत्म ही सुखदाई ।
आत्म-मनन ही है रत्नत्रय-
पूरित अवगाहन सुखधाम ।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को सतत प्रणाम ।

पंडित पूजा

ओंकारस्य ऊर्धस्य,
ऊर्ध्व सद्भाव शाश्वतं ।
विद् स्थानेन तिष्ठंते,
ज्ञानेन शाश्वतं ध्रुवं ।

एक

ओम् रहा है और रहेगा,
सतत उच्च सद्भावागार ।
परमब्रह्म, आनन्द ओम् है,
ओम् अमूत, शून्य—आकार ।
ओम् पंच परमेष्टी मंडित,
ओम् ऊर्ध्व गति का धारी ।
केवल-ज्ञान-निकुञ्ज ओम् है,
ओम् अमर, ध्रुव, अविकारी ।

निश्चय नय जानंते,
शुद्ध तत्व विधीयते।
ममात्मा गुणं शुद्धं,
नमस्कारं शाश्वतं ध्रुवं।

दो

जिन्हें वस्तु के सत् चित् ज्ञायक,
या निश्चय नय का है ज्ञान।
वही अनुभवी, पारखि करते,
निज स्वरूप की सत् पहिचान।
अन्तस्तल-आसीन आत्मा,
ही है अपना देव ललाम।
आत्म द्रव्य का अनुभव करना,
ही है सच्चा, अचल प्रणाम।

ॐ नमः विद्ते जोगी,
सिद्धं भवत् शाश्वतं।
पंडितो सोपि जानते,
देवपूजा विधीयते ।

तीन

योगीजन नित ओम् नम का
शुद्ध ध्यान ही धरते हैं।
'सोऽहँ' पद पर चढ़ कर ही वे,
प्राप्त सिद्ध-पद करते हैं।
'ओम् नमः' जपते जपते जो,
निज स्वरूप में रमजाता।
वही देव पूजा करता है,
पंडित वह ही कहलाता।

ह्रीकारं ज्ञान उत्पन्नं,
ओंकारं च वदते ।
अर्हं सर्वज्ञ उक्तं च,
अचक्षु दर्शन दृष्टते ।

चार

जगत पूज्य अरहन्त जिनेश्वर,
जिसका देते नव उपदेश ।
साम्य दृष्टि सर्वज्ञ सुनाते,
जिसका घर घर में सन्देश ।
जो अचक्षु-दर्शन-चख गोचर,
जो चित चमत्कार सम्पन्न ।
ओंकार की शुद्ध वंदना,
करती वही ज्ञान उत्पन्न ।

मति श्रुतश्च संपूर्ण,
ज्ञानं पंचमयं ध्रुवं ।
पंडितो सोपि जानंते,
ज्ञानं शास्त्र स पूजते ।

पांच

मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय से,
ज्ञान करें जिसमें कल्लोल ।
पंच ज्ञान केवल भी जिसमें,
छोड़ रहा नित ज्योति अलोल ।
ऐसे आत्म-शास्त्र को ही नित,
जो पूजे विवेक-शिरमौर ।
वही सत्य पंडित प्रज्ञाधर,
वही ज्ञान-धन का है ठौर ।

ॐ ह्री श्रियंकारं,
दर्शनं च ज्ञानं ध्रुवं ।
देवं गुरुं श्रुतं चरणं,
धर्मं सद्भावशाश्वतं ।

छह

ह्रीं श्रीं के रूप मनोहर,
करते जिसमें विमल प्रकाश ।
अमर ज्ञान, दर्शन का है जो,
एक मात्रतम दिव्य निवास ।
वही परम उत्कृष्ट ओम् हो,
है त्रिभुवन मंडल में सार ।
वही देव, गुरु, शास्त्र, आचरण,
वही धर्म सद्भावागार ।

वीर्य अकारणं शुद्धं,
त्रैलोकं लोकितं ध्रुवं।
रत्नत्रयं मयं शुद्धं,
पंडितो गुरु पूजते।

सात

केवलज्ञान-मुकुर में जिसको,
तीनों लोक दिखाते हैं।
जिसके स्वाभाविक बल-जल का,
निधि-दल थाह न पाते हैं।
रत्नत्रय की सुरसरिता से,
शुद्ध हुआ जो द्रव्य महान्।
उसी आत्म रूपी सद्गुरु की,
करते हैं पूजन विद्वान।

देवं गुरुं श्रुतं वंदे,
धर्मशुद्धं च वंदते।
तीर्थं अर्थलोकं च,
स्नानं च शुद्धं जलं।

आठ

आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुरु भाई!
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही,
तीर्थ आत्म ही सुखदाई।
आत्म-मनन ही है रत्नत्रय-
पूरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को सतत प्रणाम।

चेतना लक्षणो धर्मो,
चेतियंत सदा बुधै ।
ध्यानस्य जलं शुद्धं,
ज्ञानं स्नान पंडिता ।

नौ

चिदानंद, ध्रुव, शुद्ध आत्मा,
की चेतनता है पहिचान ।
बुद्धिमान जन नित्य निरन्तर,
धरते हैं उस ही का ध्यान ।
नदी, सरोवर में करते हैं,
अवगाहन जड़ अज्ञानी ।
आत्म-ज्ञान-जल से प्रक्षालन,
करते सत्पंडित ज्ञानी ।

शुद्धतत्वं च वेदंते,
त्रिभुवनम् ज्ञानं सुरं ।
ज्ञानं मयं जलं शुद्धं,
स्नानं ज्ञानं पंडिता ।

हस्तमलकवत् जिसको तीनों,
भुवन, चराचर प्राणी हैं।
उसी ब्रह्म को ध्याते हैं बस,
जो बुधजन, विज्ञानी हैं।
शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर,
कल कल करता जिसमें ज्ञान।
इसी ज्ञान रूपी जल में नित,
पंडित जन करते (हैं) स्नान।

सम्यक्तस्य जलं शुद्धं,
संपूर्ण सर पूरितं ।
स्नानं पिवत गणधरनं,
ज्ञानं सरनंतं ध्रुवं ।

ग्यारह

सम्यग्दर्शन रूपी जिसमें,
भरा हुआ है नीर अगम्य ।
ऐसा है वह परम, ब्रह्म का,
भव्यों ! सरवर अविचल रम्य ।
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी,
जिनकी शरण अनेकों ज्ञान ।
इस सर में ही अवगाहन कर,
करते इसका ही जल पान ।

शुद्धात्मा चेतनाभावं,
शुद्ध दृष्टि समं ध्रुवं ।
शुद्ध भाव थिरी भूत्वा,
ज्ञानं ज्ञान पंडिता ।

बारह

शुद्ध आत्मा है, हे भव्यों !
सत् चैतन्य भाव का पुंज।
सम्यग्दर्शन से आभूषित,
मोक्ष प्रदाता, ज्ञान-निकुंज ।
निश्चल मन से इसी तत्व के,
शुद्ध गुणों का करना ध्यान ।
पंडित वृन्दों का बस यह ही,
प्रज्ञाकन है सत्य महान् ।

प्रक्षालितं त्रति मिथ्यात्वं,
शल्यं त्रियं निकंदनं।
कुज्ञान राग दोषं च,
प्रक्षालितं अशुभभावना।

तेरह

धुल जाते इस ज्ञान-नीर से,
तीनों ही मिथ्यात्व समूल।
तीनों शल्यों को विनिष्ट कर,
ज्ञान बना देता यह धूल।
अशुभ भावनाएं भी सारी,
इस जल से धुल जाती हैं।
राग द्वेष, कुज्ञान-कालिमा
पास न रहने पाती हैं।

कषायं च अनंतानं,
पुण्य पाप प्रक्षालितं ।
प्रक्षालितं कर्म दुष्टं च,
ज्ञानं स्नान पंडिता ।

चौदह

पुण्य, पाप दोनों रिपुओं को,
क्षय कर देता है यह नीर ।
मलिन कषायें छिप जाती हैं,
देख रश्मि से इसके तीर ।
कर्म—नृपति की सेना को भी,
कर देता यह जल—भट चूर्ण ।
ऐसा है यह ज्ञान—उदक का,
अवगाहन मंगल परिपूर्ण ।

प्रक्षालितं मन चंचलं,
अविधि कर्म प्रक्षालिते।
पंडितो वस्त्र संयुक्तं,
आभरनं भूषणक्रियते।

पंद्रह

चंचल मन भी ज्ञान-नीर से,
प्रक्षालित हो जाता है।
द्रव्य, भाव, नो कर्म-यूथ भी,
वहां न फिर दिख पाता है।
सम्यक् विधि से परम ब्रह्म को,
जब उज्वल कर देता नीर।
तब ज्ञानी जन धारण करते,
हैं अपने आभूषण चीर।

वस्त्रं च धर्म सद्भावं,
आभरणं रत्नत्रयं ।
मुद्रका सम मुद्रस्य,
मुकुटं ज्ञानमयं ध्रुवं ।

सोलह

शुद्ध आत्म-सद्भाव-धर्म ही,
है पंडित का उज्वल चीर।
झिलमिल करता रत्नत्रय ही,
है उसका भूषण गंभीर।
समताभावमयी मुद्रा ही,
है उसकी मुद्रिका अनूप।
अविनाशी, शिव, सत्य ज्ञान ही
उसका ध्रुव किरीट चिद्रूप।

दृष्टतं शुद्ध दृष्टो च,
मिथ्यादृष्टि च त्यक्तयं।
असत्यं अनृतं न दृष्टंते,
अचेत दृष्टिं न दीयते।

सत्रह

जो ज्ञानी जन करते रहते,
ज्ञान–नीर से अवगाहन।
परम ब्रह्म उनका दर्पण–वत,
हो जाता निर्मल पावन।
मिथ्या दर्शन को क्षय कर वे,
शुद्ध दृष्टि हो जाते हैं।
असत, अचेतन, अनृत दृष्टि से,
फिर न दुःख वे पाते हैं।

दृष्टतं शुद्ध समयं च,
सम्यक्त्वं शुद्धं ध्रुवं।
ज्ञानं मयं च संपूर्ण,
ममलदृष्टि सदा बुधैः।

अठारह

ज्ञान-नीर के अवगाहन से,
असत् भाव मिट जाता है।
परम शुद्ध सम्यक्त्व मात्र ही,
फिर हिय मे दिखपाता है।
शुद्ध बुद्ध ही दिखते है फिर
आंखों में प्रत्येक घड़ी।
दिखता है बस यही ज्ञान की,
अंतर में मच रही झड़ी।

लोकमूढ़ं न दृष्टंते,
देव पाखंड न दृष्टते।
अनायतन मद् अष्टं च,
शंकादि अष्ट न दृष्टते।

उन्नीस

ज्ञान नीर से मिट जाता है,
तीन मूढ़ताओं का ताप।
अष्ट मदों का मन-मन्दिर में
फिर न शेष रहता सन्ताप।
छह अनायतन डरते हैं फिर,
नहीं हृदय में आते हैं।
अष्ट दोष भी तस्कर नाईं,
देख इसे छिप जाते हैं।

दृष्टं शुद्ध पदं सार्धं,
दर्शन मल विमुक्तयं।
ज्ञानं मयं शुद्ध सम्यक्त्वं,
पंडितो दृष्टि सदा बुधैः।

बीस

सप्त तत्त्व का जो निदान है,
अगम, अगोचर, मनभावन।
उसी 'ओम्' से मंडित दिखता,
बुधजन को चेतन पावन।
आत्म-देश में जहां कहीं भी,
जाते उसके मन-लोचन।
उन्हें, वहीं दिखता है निर्मल,
सम्यग्दर्शन दुख-मोचन।

वेदका अग्रस्थिरश्चैव,
वेदतं निरग्रंथं ध्रुवं ।
त्रैलोक्यं समयं शुद्धं,
वेद वेदांत पंडिता ।

इक्कीस

जो पडित कहलाता है या
होता जो वेदान्त प्रवीण।
अग्र ज्ञान को कर उसमें वह
सतत रहा करता तल्लीन ।
तीन लोक का ज्ञायक है जो,
ग्रन्थहीन, ध्रुव, अविनाशी ।
उसी आत्म का अनुभव करता,
नितप्रति ज्ञान-नगर-वासी ।

उच्चारण ऊर्ध शुद्धं च,
शुद्ध तत्वं च भावना।
पंडितो पूज आराध्यं,
जिन समयं च पूजतं।

बाईस

ऊर्ध्व-प्रयाणक प्रणव मंत्र का,
करना मुख से उच्चारण।
अपने विमल हृदय-मन्दिर में
करना शुद्ध भाव धारण।
यही एक पंडित-पूजा है,
पूज्यनीय, शिव, सुखदाई।
शुद्ध आत्मा का पूजन ही,
है जिन पूजन हे भाई।

पूजतंच जिनं उक्तं,
पंडितो पूजतो सदा।
पूजतं शुद्ध सार्धं च,
मुक्ति गमनं च कारणं।

तेईस

आत्मद्रव्य की पूजा करता,
बन जो जिन-वच-अनुगामी।
वही एक जग में करता है,
पंडितपूजा शिवगामी।
शुद्ध आतमा ही, भव-जल से,
तरने का बस है साधन।
मुक्ति चाहते हो यदि तुम तो,
करो इसी का आराधन।

अदेवं अज्ञान मूढं च,
अगुरुं अपूज्य पूजनं।
मिथ्यात्वं सकलजानते,
पूजा संसार भाजनं।

चौबीस

'देव' किन्तु देवत्वहीन जो,
वे 'अदेव' कहलाते हैं।
वही 'अगुरु' जड़ जो गुरु बनकर,
झूठा जाल बिछाते हैं।
ऐसे इन 'अदेव' 'अगुरों' की,
पूजा है मिथ्यात्व महान।
जो इनकी पूजा करते वे,
भव भव में फिरते अज्ञान।

तेनाहं पूज शुद्धं च,
शुद्ध तत्व प्रकाशकं।
पंडितो बंदना पूजा,
मुक्तिगमनं न संशय।

पचीस

मम तत्व के पुँजों का नित,
करता है जो प्रतिपादन।
वही ब्रह्म है पूज्य, विज्ञगण!
करो उसी का आराधन।
अगुरु, अदेवादिक की पूजा,
आवागमन बढ़ाती है।
आत्म-अर्चना, आत्म-वंदना,
मुक्ति-नगर पहुंचाती है।

प्रन इन्द्र प्रत पूर्णस्य,
शुद्धात्मा शुद्ध भावना ।
शुद्धार्थं शुद्ध समय च,
प्रत इन्द्रं शुद्ध दृष्टित ।

छब्बीस

इन्द्र कौन ? निज चेतन ही तो,
सत्य इन्द्र, भव्यो स्वयमेव ।
वही एक है शुद्ध भावना,
वही परम देवों का देव ।
वही ब्रह्म, शुचि शुद्ध अर्थ है,
वही समय निर्मल, पावन ।
उसी शुद्ध चिद्रूप देव का,
करो चिन्तवन मनभावन ।

दातारो दान शुद्धं च,
पूजा आचरण संयुत।
शुद्धसम्यक्त्वहृदयंयस्य
स्थिरं शुभ भावना।

सत्ताईस

जिस जन के हृदयस्थल में है,
सम्यग्दर्शन रत्न महान।
अपने ही में आप लीन जो,
जिसे न सपने में पर ध्यान।
आत्म द्रव्य का पूजन करता,
कर जो नव आदर सत्कार।
परमब्रह्म को वही ज्ञान का,
देता महा दान दातार।

शुद्ध दृष्टो च दृष्टते,
सार्धं ज्ञान मयं ध्रुवं।
शुद्धतत्वं च आराध्यं,
वंदना पूजा विधीयते।

अट्ठाईस

चिदानंद के ज्ञान-गुणों के,
अनुभव में होना तल्लीन।
यही एक वन्दन है सच्चा,
नहीं वन्दना और प्रवीण।
शुद्ध आत्म का निर्मल मन से,
करना सच्चा आराधन।
यही एक बस पूजा सच्ची,
यही सत्य बस अभिवादन।

संघस्य चत्र संघस्य,
भावना शुद्धात्मनां ।
समयसारस्य शुद्धस्य,
जिनोक्तं सार्ध ध्रुवं ।

उनतीस

मुनी, आर्यिका, श्रावक-दम्पति,
भी क्यों करें इतर चर्चा ?
निजानन्द-रत होकर वे भी,
करे आत्म की ही अर्चा ।
शुद्ध आतमा ही बस जग में,
सारभूत है हे ! भाई ।
जिन प्रभु कहते, आत्म ध्यान ही,
एक मात्र है सुखदाई ।

सार्धं च सप्ततत्वानं,
द्रव्यकाया पदार्थकं ।
चेतनाशुद्ध ध्रुव निश्चय,
उक्त च केवलं जिनं ।

तीस

सप्त तत्व को देखो चाहे
छह द्रव्यों का छानो कुंज ।
नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय का,
चाहे सतत बिखेरो पुंज ।
इन सबमें पर जीव-तत्व ही,
सार पाओगे विज्ञानी ।
आतम तत्व ही सारभूत है,
कहती यह ही जिन वाणी ।

मिथ्या तिक्तं त्रतियं च,
कुज्ञान त्रति तिक्तयं ।
शुद्ध भाव शुद्ध समय च,
सार्धं भव्य लोकया ।

इकतीस

दर्शन मोह तीन हैं भव्यों,
छोडो उनसे अपना नेह ।
कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, कुज्ञानों,
से भी हीन करो हिय-गेह ।
निर्मल भावों से तुम निशिदिन
धरो आतम का निश्चल ध्यान ।
आतम-ध्यान ही भव-सागर के,
तरने को है पोत महान ।

एतत सम्यक्त्वपूज्यस्य,
पूजा पूज्य समाचरेत।
मुक्तिश्रियं पथं शुद्ध,
व्यवहारनिश्चयशाश्वतं।

बत्तीस

निर्मल कर मन, वचन, काय की
तीर्थ स्वरूपिणि वैतरणी।
करो आत्म की पूजा विज्ञों,
यही एक भव-जल-तरणी।
शुद्ध आतमा का पूजन ही,
पूजनीय है सुखदाई।
युगल नयों से सिद्ध यही है,
यही एक शिव–पथ भाई!

द्वितीय धारा

माला रोहण

"श्रेणिक सुनो वास्तविक गूढ़ यह है,
जो पूर्णतम हैं सम्यक्त्व धारी।
केवल वही पुण्यशाली सुजन ही,
नृप! धर सके मालिका यह सुखारी।
जो इंद्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्षादि,
नाना तरह के तुमने बताये।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन्,
यह दिव्य माला नहीं देख पाये।"

माला रहस्य

ॐकार वेदांत शुद्धात्म तत्वं,
प्रणमामि नित्यं तत्त्वार्थ सार्ध।
ज्ञानं मयं सम्यकदर्शनोत्थं,
सम्यक्त्वचरणं चैतन्यरूपं।

एक

ओङ्कार रूपी वेदान्त ही है,
रे तत्व निर्मल शुद्धात्मा का।
ओङ्कार रत्नत्रय की मंजूषा,
ओङ्कार ही द्वार परमात्मा का।
ओङ्कार ही सार तत्त्वार्थ का है,
ओङ्कार चैतन्य प्रतिमाभिराम।
ओङ्कार मे विश्व, ओङ्कार जग मे,
ओङ्कार को नित्य मेरा प्रणाम।

नमामि भक्तं श्रीवीरनाथं,
नं तं चतुष्टं त व्यक्त रूवं।
मालागुणं बोच्छं तत्त्वप्रबोध,
नमाम्यहं केवलि नंत सिद्धं।

दो

जोऽनंत चतुष्टय के नकेतन,
जिनके न ढिग अष्ट कर्मारि बमते।
ऐसे जिनेश्वर श्री वीर प्रभु को,
मेरा युगल पाणि से हो नमस्ते।
मैं केवली, सिद्ध, परमेष्ठियो को,
भी भक्ति से आज मस्तक नवाता।
जो सप्त तत्वों की है प्रकाशक,
उस मालिका के गुण आज गाता।

कायाप्रमाणं त्वं ब्रह्मरूपं,
निरंजनं चेतनलक्षणत्वं ।
भावे अनेत्वं जे ज्ञानरूपं,
ते शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व वीर्यं ।

तीन

इस ब्रह्मरूपी निज आत्मा का,
काया बराबर स्वच्छंद तन है ।
मल से विनिर्मुक्त, है यह घनानंद
चैतन्य-संयुक्त, तारनतरन है ।
जो इस निरंजन शुद्धात्मा के,
शंकादि तजकर बनते पुजारी ।
वे ही सफल हैं, निज आत्मबल में,
वे ही सुजन हैं सम्यक्त्व धारी ।

संसार दुक्खं जे नर विरक्तं,
ते समय शुद्धं जिन उक्त दृष्टं ।
मिथ्यात्व मद मोह रागादि खंडं,
ते शुद्ध दृष्टी तत्त्वार्थ सार्धं ।

चार

श्री जैन वाणी में मुख कमल से,
कहते गिरा सिद्ध परमात्मा हैं ।
"संसार दु खों से जो परे! हैं,
भव्यों वही जीव शुद्धात्मा हैं ।
मिथ्यात्व, मद, मोह रागादिकों-से
जिनने किये हैं रिपु नाश भारी ।
ही सुजन हैं तत्वार्थ ज्ञाता,
वे ही पुरुष हैं सम्यक्त्व धारी ।

शल्यं त्रियं चित्त निरोध नेत्त्वं,
जिन उक्त वाणी हृदि चेतनेत्व ।
मिथ्याति देवं गुरु धर्मदूरं,
शुद्धं स्वरूपं तत्त्वार्थ सार्धं ।

पांच

श्री वीर प्रभु के अमृत-वचन का,
जिनके हृदय में जलता दिया है।
मिथ्यादि त्रय शल्य का रोग जिनने,
सम्यक्त्व–उपचार से क्षय किया है।
मिथ्यात्व-मय देव, गुरु, धर्म से जो,
रहते सदा हैं परे आत्म–ध्यानी।
वे ही पुरुष हैं शुद्धात्म–प्रतिमूर्ति,
सम्यक्त्व धारी, तत्त्वार्थ–ज्ञानी ।

जे मुक्ति सुक्ख नर कोपि सार्धं,
सम्यक्त्व शुद्धं ते नर धरेत्व।
रागाद्यो पुन्य पापाय दूरं,
ममात्मा स्वभावं ध्रुव शुद्ध दृष्टं।

छह

मै सिद्ध हूँ, मुक्ति-रमणी बिहारी,
है मोक्ष मेरी यही चारु काया।
मद, मोह, मल, पुण्य, रागादिकों की,
पड़ती न मुझ पर कभी भूल छाया।
सम्यक्त्व से पूर्ण जिनके हृदय हैं,
जो चाहते मोक्ष किस रोज पावें?
वे स्वावलम्बी इसी भांति अपने,
हृदयस्थ परमात्मा को रिझावें।

श्री केवलंज्ञान विलोकतत्त्वं,
शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्त्वं।
सम्यक्त्व ज्ञानं चर नंत सौख्यं,
तत्त्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं।

सात

ज्ञानारसी में जिस तत्व का रे!
दिखता सतत है प्रतिबिम्ब प्यारा।
जिसके वदन से प्रतिपल बिखरता—
रहता प्रभा-पुंज शुचि, शुद्ध न्यारा।
सम्यक्त्व की पूर्ण प्रतिमूर्ति है जो,
है जो अनूपम आनन्द राशी।
तत्त्वार्थ के सार उस आत्मा को,
देखो, विलोको, मोक्षाभिलाषी!

सम्यक्त्व शुद्धं हृदय समस्तं,
तस्य गुणमाला गुथतस्य वीर्यं।
देवाधिदेवं गुरु ग्रंथ मुक्तं,
धर्मं अहिंसा क्षमा उत्तमध्यं।

आठ

सम्यक्त्व की चारु चन्द्रावली से,
सबके हृदय-हार है जगमगाते।
पुण्यात्मा, वीरवर जीव ही पर,
उसके गुणों को कर व्यक्त पाते।
जिनराज ही देव हैं ज्ञानियों के,
गुरु ग्रन्थ-निर्मुक्त, कल्याणकारी।
है धर्म परमोच्च उत्तम अहिंसा,
जिसमें विहँसती क्षमा शक्तिधारी।

तत्वार्थ सार्थं त्वं दर्शनेत्वं,
मलं विमुक्तं सम्यक्त्व शुद्ध।
ज्ञानं गुणं चरणस्य शुद्धस्य वीर्य,
नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्वं।

नौ

तत्वार्थ के सार को तुम विलोको,
जो शुद्ध सम्यक्त्व का बन्धु ! प्याला।
परिपूर्ण जो शुद्धतम ज्ञान से है,
जो है अतुल शक्ति चारित्र वाला।
यह सार प्यारा शुद्धात्मा है,
चिर सुख-सदन का अनुपम सु साधन।
ऐसे अमोलक विज्ञानघन को,
मैं नित्य करता सहस्राभिवादन।

जे सप्त तत्वं षट दर्ब युक्तं,
पदार्थ काया गुण चेतनेत्व ।
विश्वं प्रकाशं तत्वान वेदं,
श्रुत देव देवं शुद्धात्म तत्वं ।

दस

जो सप्त तत्वों को व्यक्त करता,
षट द्रव्य जिसको हस्तामलक है ।
पंचास्तिकाया औ नौ पदारथ,
जिसमें निरतर देते झलक हैं ।
चैतन्यता से है जो विभूषित,
त्रिभुवन-तली को जो जगमगाता ।
श्रुत–ज्ञान रूपी उस आत्म मे ही,
रत रह, करो आत्म-कल्याण भ्राता !

देवं गुरुं शास्त्र गुणान नेत्वं,
सिद्धं गुणं सोलाकारणेत्वं ।
धर्मं गुण दर्शन ज्ञान चरणं,
मालाय गुथतं गुणसत्स्वरूपं ।

ग्यारह

सत् देव, सत् शास्त्र, सत् साधुजन मे,
श्रद्धा करो नित्य सम्यक्त्वधारी ।
मुक्तिस्थ सिद्धों का नित मनन कर,
ध्यावो परम भावनाये सुखारी ।
शुचि, शुद्ध रत्नत्रय-मालिका मे,
अपने अमोलक हृदय को सजाओ ।
शिव पथ जिन धर्म को ही समझकर,
उसके निरन्तर, सतत गीत गावो ।

पड़माय ग्यारा तत्त्वान पेषं,
व्रत्तान शीलं तप दान चित्तं।
सम्यक्त्व शुद्धं ज्ञानं चरित्रं,
सुदर्शनं शुद्ध मलं विमुक्तं।

बारह

एकादश स्थान में आचरण कर,
कर्मारि पर जय करो प्राप्त भारी।
पंचाणुव्रत पाल भव भव सुधारो,
एकाग्र हो तप तपो तापहारी।
दो दान सत्पात्र-दल को चतुर्भांति,
निज आत्म की ज्योति को जगमगाओ।
पावन करो शील-सुर-वारि से गेह,
सम्यक्त्व-निधि प्राप्त कर मोक्ष पाओ।

मूलं गुणं पालंत जीव शुद्धं,
शुद्धं मयं निर्मल धारयेत्वं ।
ज्ञानं मयं शुद्ध धरत चित्तं,
ते शुद्ध दृष्टी शुद्धात्मतत्वं ।

तेरह

वसु मूलगण को पालन किये से,
रे ! जीव होता है शुद्ध, सुन्दर ।
पुण्यार्थियों को इससे उचित है,
धारण करें वे यह व्रत-पुरन्दर ।
जो ज्ञानसागर इस आचरण से,
यह देव-दुर्लभ जीवन सजाते ।
वे वीर नर ही हैं शुद्ध दृष्टी,
शुद्धात्म के तत्व वे ही कहाते ।

शंकाद्य दोषं मद मान मुक्तं,
मूढं त्रियं मिथ्या माया न दृष्ट।
अनाय षटकर्म मल पंचवीसं,
त्यक्तस्य ज्ञानी मल कर्ममुक्तं।

चौदह

शंकादि वसु दोष, मानादि मद को,
जिसके हृदय मे कुछ थल नहीं है।
त्रय मूढ़ता, षट आनायतन की,
जिस पर न पड़ती छाया कहीं है।
उपरोक्त पच्चीस मल-वैरियों पर,
जिसने विजय प्राप्त की भव्य भारी।
वह कर्म के पाश से छूटता है,
बनता वही मुक्ति-रमणी–बिहारी।

शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्मतत्त्व,
समस्त सङ्कल्प विकल्प मुक्तं ।
रत्नत्रयालंकृत सत्स्वरूपं,
तत्वार्थसार्धं बहुभक्तियुक्तं ।

पंद्रह

शुद्धात्मा–तत्व का भव्य जीवों,
है शुद्ध, सित, सौम्य, निर्मल प्रकाश ।
संकल्प आदिक का क्षोभ उसमें,
करता नहीं रंच भी है निवास ।
शुद्धात्मा का शुद्ध स्वरूप,
है रत्नत्रय से सज्जित सुखारी ।
तत्वार्थ का सार भी बस यही है,
भव्यों, बनो आत्म के तुम पुजारी ।

जे धर्म लीना गुण चेतनेत्वं,
ते दुःख हीना जिनशुद्धदृष्टी।
संप्रोय तत्वं सोई ज्ञान रूपं,
ब्रजंति मोक्षं क्षणमेक एत्वं।

सोलह

शुद्धात्मा के चैतन्य गुण में,
जो नर निरन्तर लवलीन रहते।
वे विज्ञ ही हैं, जिन शुद्ध दृष्टी,
संसार दुख–धार में वे न बहते।
जीवादि तत्वो का ज्ञान करके,
होते स्वरूपस्थ वे आतम–ध्यानी।
कर्मारि-दल का विध्वंस करके,
वरते वही वे शिवा-सी भवानी।

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं,
माला गुणं कंठ हृदय अरुलितं।
तत्वार्थ सार्धं चकरोत नेत्वं,
संसार मुक्तं शिव सौख्य वीर्यं।

सत्रह

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म-प्रेमी,
नित पालते हैं सम्यक्त्व पावन।
अपने हृदस्थल पर धारते हैं,
जो यह गुणों की माला सुहावन।
वे भव्य जन ही पीते निरन्तर,
तत्वार्थ के सार का चारु प्याला।
संसार-सागर से पार होकर,
पाते वही जीव चिर सौख्य-शाला।

ज्ञानं गुणं माल सुनिर्मलेत्वं,
संक्षेप गुथितं तुच गुण अनन्तं ।
रत्नत्रियालंकृत सस्स्वरूपं,
तत्वार्थ सार्धं कथितं जिनेन्द्रै ।

अठारह

शुद्धात्मा की गुणमालिका में,
वाणी अगोचर हैं पुष्प भाई ।
सक्षेप में ही, पर पुष्प चुन चुन
यह दिव्य माला मैने बनाई ।
आगम, पुराणो से तुम सुनोगे,
बस एक ही वाक्य परमात्मा का ।
रत्नत्रयाच्छन्न' है भव्य जीवों,
शशि सा सुलक्षण शुद्धात्मा का ।

श्रेनोय पृच्छंति श्री वीरनाथं,
मालाश्रियं मागंत नेहचक्कं।
धरणेन्द्र इन्द्रं गन्धर्व जक्षं,
नरनाह चक्कं विद्या धरेत्वं।

उन्नीस

श्री वीर प्रभु से श्रेणिक नृपति ने,
पूछा सभा में मस्तक नवाकर।
इस मालिका को त्रिभुवन तलीपर,
किसने विलोका कहो तो गुणागर ?
क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व ने भी,
देखी कभी नाथ यह दिव्यमाला ?
या यक्ष, चक्रेश, विद्याधरों ने,
पाया कभी नाथ यह मुक्ति-प्याला ?

किं दिप्त रतनं बहुवे अनन्तं,
किं धन अनंतं बहुभेय युक्तं ।
किं त्यक्त राज्यं बनवासलेत्वं,
किं तत्व वेत्वं बहुवे अनंतं ।

बीस

जिसके भवन में हीरे जवाहिर,
या द्रव्य की लग रहीं राशि भारी ।
ऐसे कुबेरों ने भी प्रभो क्या,
देखी कभी माल यह सौख्यकारी ?
या राज्य को त्याग जोगी बने जो,
उनने विलोकी यह माल स्वामी;
या सप्त तत्वों के पंडितों ने,
देखी गुणावलि यह मोक्षगामी ?

श्री वीरनाथं उक्तं च शुद्धं,
श्रुणु श्रेण राजा माला गुणार्थं।
किं रत्न किं अर्थ किं राजनार्थे,
किं तत्व वेत्वं नच माल दृष्ट।

इक्कीस

बोले जिनेश्वर श्री मुख-कमल से,
"श्रेणिक सुनो मालिका की कहानी।
इस आत्म-गुण की सुमनावली के,
दर्शन सहज में न हों प्राप्त ज्ञानी।
ना तो कभी रत्नधन-धारियों ने,
श्रेणिक सुनो! मालिका यह निहारी।
ना मालिका को उनने विलोका,
जो मात्र थे तत्व के ज्ञानधारी।"

किं रत्न कार्यं बहुवे अनंतं,
किं अर्थं अर्थं नहि कोपि कार्यं।
किं राज चक्रं किं काम रूपं,
किं तत्व वेत्वं बिन शुद्ध दृष्टि।

बाईस

"इस माल के दर्शनों में न तो भूप,
रत्नादि पत्थर ही काम आवें।
ना सार्वभौमों के राज्य या धन
ही इस गुणावलि को देख पावें।
ना तो इसे देख तत्वज्ञ पाये,
ना कामदेवों से दृग-सुखारी!
दर्शन वही कर सके मालिका का,
थे जो सुनो शुद्धतम दृष्टि धारी।"

जे इन्द्र धरणेन्द्र गंधर्व यक्षं,
नाना प्रकारं बहुवे अनंतं ।
तेऽनंत प्रकारं बहु भेय कृत्वं,
माला न दृष्ट कथितं जिनेन्द्रै ।

तेईस

"श्रेणिक ! सुनो वास्तविक गूढ़ यह है,
जो पूर्णतम हैं सम्यक्त्व धारी ।
केवल वही पुण्यशाली सुजन ही,
नृप ! धर सके मालिका यह सुखारी ।
जो इन्द्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्षादि,
नाना तरह के तुमने बताये ।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन् !
यह दिव्य माला नहीं देख पाये ।"

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व युक्त,
जिन उक्त सत्यं सु तत्वार्थ सार्धं।
आशा भयं लोभ स्नेह त्यक्तं,
ते माल दृष्ट हृदय कंठ रुलतं।

चौबीस

जो स्याद्वादज्ञ, सम्यक्त्व-सम्पन्न,
शुचि, शुद्धदृष्टी, निज आत्मध्यानी।
तत्वार्थ के सार को जानते नित्य,
ध्याते पतित–पावनी जैन वाणी।
आशा, भय, स्नेह औ लोभ से जो,
बिलकुल अछूते हैं स्वात्मचारी।
वे ही हृदय कंठ में नित पहिनते,
है आत्म-गुणमाल यह सौख्यकारी।

जिनस्य उक्तं जे शुद्ध दृष्टी,
सम्यक्त्वधारीबहुगुण समाधि।
तं माल दृष्टं हृदय कंठ रुलतं,
मुक्ती प्रवेशं कथितं जिनेन्द्रैः।

पच्चीस

"जिन-उक्त-तत्वों को जानते हैं,
जो पूर्ण विधि से सम्यक्त्व धारी।
आत्म-समाधि-सा मिल चुका है,
जिनको समुज्ज्वल-तम रत्न भारी।
उनके हृदय-कंठ पर ही निरन्तर,
विलोल करतीं ये माल ज्ञानी!
वे ही पुरुष मुक्ति में राज्य करते,
कहतीं जगत पूज्य जिनराज-वाणी।"

सम्यक्त्व शुद्धं मिथ्या विरक्तं,
लाजं भयं गौरव जेवि त्यक्तं।
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रलतं,
मुक्तस्य गामी जिनदेव कथितं।

छब्बीस

"मिथ्यात्व को सर्वथा त्याग कर जो,
नर हो चुके हैं सम्यक्त्व धारी।
जिनके हृदय लाज, भय से रहित हैं,
जिनने किये नष्ट मद अष्ट भारी।
उनकी हृदय-सेज ही भव्य जीवों!
इस मालिका की क्रीड़ास्थली है।
जिनदेव कहते उनके रमण को,
ही बस खुली शिवनगर की गली है।"

जे दर्शनं ज्ञान चारित्र शुद्धं,
मिथ्यात्व रागादि असत्य त्यक्तं।
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं,
सम्यक्त्व शुद्धं कर्मं विमुक्तं ।

सत्ताईस

शुचि, शुद्ध दर्शन, ज्ञानाचरण से,
जिनके हृदय में मची है दिवाली।
मिथ्यात्व, मद, झूठ, रागादि के हेतु,
जिनके न उर में कहीं ठौर खाली।
उनके हृदय कंठ पर ही निरंतर,
ये माल मनहर लटकती रही हैं।
वे ही सुजन हैं [illegible] द्ध दृष्टी,
रिपु-कर्म से मुक्ति पाते वही हैं।

पादस्थ पिण्डस्थ रूपस्थ चित्तं,
रूपा अतीतं जे ध्यान युक्तं ।
आर्त रौद्रं मद मान त्यक्तं,
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलत ।

अट्ठाईस

पादस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, निर्मूर्त,
इन ध्यान-कुंजों के जो बिहारी ।
मद-मान—से शत्रुओं के गढ़ों पर,
जिनने विजय प्राप्त की भव्य भारी ।
जिनके न तो रौद्र ही पास जाता,
जिनको न ध्यानार्त की गंध आती ।
ऐसे सुजन-पुंगवों के हृदय ही,
यह आत्म-गुण-मालिका है सजाती ।

अन्या सुवेदं उपशम धरेत्वं,
क्षायिकं शुद्धं जिन उक्त सार्धं।
मिथ्या त्रिभेद मल राग खडं,
ते माल दृष्टं हृदय कठ रुलतं।

उनतीस

जो श्रेष्ठतम नर वेदक व उपशम,
सम्यक्त्व के हैं शुचि शुद्ध धारी।
मिथ्यात्व से हीन, है प्राप्त जिनको,
सम्यक्त्व क्षायिक-सा रत्न भारी।
मद-राग से जो रहित सर्वथा है,
जो जानते, जिन—कथित तत्व पावन।
वे ही हृद्स्थल पर देखते हैं,
नित राजती, मालिका यह सुहावन।

जे चेतना लक्षणो चेतनेत्वं,
अचेतं विनासी असत्यं च त्यक्तं ।
जिन उक्त सत्यं सु तत्व प्रकाशं,
ते माल दृष्ट हृदय कंठ र [illegible]

तीस

चैतन्य—लक्षण—मय आत्मा के,
हैं जो निराकुल, निश्चल पुजारी।
अनृत, अचेतन, विनाशीक, पर में,
जिनको नहीं [illegible]च ममता दुखारी।
जिनके हृदय में जिन उक्त तत्वों,
की नित्य जलती संतप्त ज्वाला।
उनके हृदय-कंठ को ही जगाती,
श्रेणिक सुनो! यह अध्यात्म-माला।

जे शुद्ध बुद्धस्य गुण सस्य रूपं,
रागादि दोषं मल पुंज त्यक्त ।
धर्मं प्रकाशं मुक्ति प्रवेश,
ते माल दृष्ट हृदय कंठ रुलत ।

इकतीस

जिन शुद्ध जीवों को दिख चुकी है,
निज आत्म की माधुरी मूर्ति बाँकी।
जिनके दृगों के निकट झूलती है,
प्रतिपल सुमुखि मुक्ति की दिव्य झांकी।
जो रागद्वेषादि मल से परे है,
जो धर्म की कान्ति को जगमगाते।
इस मालिका को वही शुद्ध दृष्टी,
अपने हृदय पर फबी देख पाते।

जे सिद्ध नं त मुक्ति प्रवेशं,
शुद्धं स्वरूप गुण माल ग्रहितं।
जे केवि भव्यात्म सम्यक्त्व शुद्धं,
ते जात मोक्षं कथितं जिनेन्द्रैः।

बत्तीस

अब तक गये विश्व से जीव जितने,
चोला पहिन मुक्ति का सिद्ध शाला।
अपने हृदय पर सजा ले गये हैं,
वे सब यही आत्म-गुण-पुष्पमाला।
इस ही तरह शुद्ध सम्यक्त्व धरकर,
जो माल धरते यह सौख्यकारी,
कहते जिनेश्वर वे मुक्त होकर,
बनते परमब्रह्म आनंदधारी।

तृतीय धारा

कमल बत्तीसी

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में,
सच्चा रत्नत्रय है ।
सब देवों का देव वही,
परमेश्वर एक अजय है ।
आतम तत्व ही सब गुरुओं का,
श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी ।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस,
आतम तत्व सुखदानी ।

कमल बत्तीसी

तत्वं च परम तत्वं परमप्पा,
परम भाव दरसीए ।
परम जिनं परमिस्टी,
नमामिहं परम देवदेवस्य ।

एक

तत्वों में जो तत्व परम हैं,
भाव परम दरशाते ।
परम जितेन्द्रिय परमेष्टी जो,
परमेश्वर कहलाते ।
सब देवों में देव परम जो,
वीतराग, सुख-साधन ।
ऐसे श्री अरहन्त प्रभू को,
करता मैं अभिवादन ।

जिन वयनं सद्दहनं,
कमल सिरि कमल भाव उववन्नं।
आर्जव भाव संजुत्तं,
ईर्ज स्वभाव मुक्ति गमनं च।

दो

पतितोद्धारक जिन वाणी के,
होते जो श्रद्धानी।
आत्म-कमल से प्रगटे, उनके
ही भव—भाव-भवानी।
आत्म-बोध का हो जाना हो,
आकुलता जाना है।
आकुलता का जाना ही बस,
शिव सुख को पाना है।

अन्मोयं न्यान सहावं,
रयनं रयन स्वरूव ममल न्यानस्य।
ममलं ममल सहावं,
न्यानं अन्मोय सिद्धि सपत्ति ।

तीन

ज्ञान-स्वभाव है, स्वत्व सनातन
आत्म तत्व का प्यारा ।
रत्नत्रय से है प्रदीप्त वह,
रत्न प्रखरतम न्यारा ।
कर्मों से निर्मुक्त, सदा वह,
शुचि स्वभाव का धारी ।
जो उसमें नित रत रहते वे,
पाते शिव सुखकारी ।

जि न य ति मि थ्या भा वं,
अनृत असत्य पर्जाव गलियं च।
गलियं कुन्यान सुभावं,
विलयं कम्मान तिविह जोएन।

चार

आत्म-मनन से मिथ्यादर्शन
ईंधन-सा जल जाता।
अनृत, अचेतन, असत् पदों में,
मोह न फिर रह पाता।
'सोऽहं' की ध्वनि क्षय कर देती
कुज्ञानों की टोली।
आत्म चिन्तवन रचदेता है,
अष्ट मलों की होली।

मन्द आनन्दं रूवं,
चेयन आनन्द पर्जाव गलियं च।
न्यानेन न्यान अन्मोयं,
अन्मोयं न्यान कम्म षिपनं च।

पांच

परम ब्रह्म में जब रत होता,
मन—मधुकर—मतवाला।
सत् चित्, आनंद से भर उठता,
तब अंतर का प्याला।
ज्ञानी चेतन, ज्ञान-कुण्ड में,
खाता फिर फिर गोते।
मलिन भाव और सबल कर्म तब,
पल पल में क्षय होते।

कम्म सहावं षिपनं,
उत्पन्न षिपिय दिष्टि सभ्भावं।
चेयन रूव संजुत्तं,
गलियं विलयंति कम्म वंधानं।

छह

कर्मों का नश्वर स्वभाव है,
जब वे खिर जाते हैं।
क्षायिक-सम्यग्दर्शन-सा तब,
रत्न मनुज पाते हैं।
क्षायिक सम्यग्दृष्टी नित प्रति,
आत्म—ध्यान धरता है।
जन्म २ के कर्मों को वह,
क्षण में क्षय करता है।

मन सुभाव संषिपनं,
संसारे सरनि भाव षिपनं च।
न्यान बलेन विसुद्धं,
अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च।

सात

इस चंचल मन का स्वभाव है,
नाशवान प्रिय भाई।
नश्वर है मिथ्यादर्शन की,
भी प्रकृति दुखदाई।
आत्म ज्ञान ही सरल शुद्ध,
भावों को उपजाता है।
सरल शुद्ध भावों के बल से,
ही नर शिव पाता है।

वैरागं तिविहि उवनं,
जनरंजन रागभाव गलियं च।
कलरंजन दोष विमुक्कं,
मनरंजन गारवेन तिक्तं च।

आठ

भव, तन, भोगों से निस्पृह बन,
जाता आत्म—पुजारी।
जन-रंजन गारव न उसे
रह, देता, दुख दुखकारी।
तन—रंजन के भय से वह,
छुटकारा पा जाता है।
मन—रंजन गारव भी उसके,
पास न फिर आता है।

दर्सन मोहंध विमुक्कं,
राग दोषं च विषय गलियं च।
ममल सुभाउ उवन्नं,
नन्त चतुस्टये दिस्टि संदर्सं।

नौ

दर्शन-मोह से हो जाता है,
मुक्त आतम का ध्यानी।
रागद्वेष से उसकी ममता,
हट जाती दुखदानी।
घट में उसके आतम-भाव का,
हो जाता उजियाला।
ऽनंत चतुष्टय की जिसमें नित,
जगती रहती ज्वाला।

तिअर्थ सुद्ध दिष्टं,
पंचार्थं पंच न्यान परमेस्टी ।
पंचाचार सुचरनं,
सम्मत्तं सुद्ध न्यान आचरनं ।

दस

सम्यग्दृष्टी नितप्रति निर्मल,
रत्नत्रय को ध्याता ।
पंच ज्ञान, पंचार्थ, पंच प्रभु,
का होता 'वह ज्ञाता ।
पचाचारों का नितप्रति ही,
वह पालन करता है ।
सब मिथ्या व्यवहार त्याग वह,
आत्म-ध्यान धरता है ।

दर्सन न्यान सुचरनं,
देवं च परम देव सुद्धं च।
गुरुवं च परम गुरुवं,
धर्मं च परम देव सुद्धं च।

ग्यारह

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में,
सच्चा रत्नत्रय है।
सब देवों का देव वही,
परमेश्वर एक अजय है।
आत्म तत्व ही सब गुरुओं में,
श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस,
आत्म तत्व सुखदानी।

जिन पंच परम जिनयं,
न्यानं पंचामि अषिरं जोयं।
न्यानेन न्याय विर्धं,
ममल सुभावेन सिद्धि सम्पत्त।

बारह

आत्म तत्व ही सम्यक्त्वी का,
परमेष्ठी पद प्यारा।
आत्म तत्व ही उसका केवल-
ज्ञान अलौकिक न्यारा।
आत्म तत्व के अनुभव से ही,
आत्म ज्ञान बढ़ता है।
आत्म ज्ञान के बल पर ही नर,
शिव पथ पर चढ़ता है।

चिदानन्द चितवनं,
चेयन आनन्द सहाव आनन्दं ।
कम्ममल पयडि षिपनं,
ममल सहावेन अन्मोय संजुत्तं ।

तेरह

सत्-चित्-आनंद चेतन में तुम,
रमण करो प्रिय भाई !
इससे तुमको होगा अनुभव,
एक अकथ सुखदाई ।
मुरझा जाती है पापों की,
आत्म मनन से माला ।
कर्म प्रकृतियों की हो जाती,
हिम–सी ठंडी ज्वाला ।

अप्पा पर पिच्छंतो,
पर पजांव सल्य मुक्कं च।
न्यान सहावं सुद्धं,
सुद्धं चरनस्य अन्मोय संजुत्तं।

चौदह

'आत्म द्रव्य का पर स्वभाव है,
पर द्रव्यों का पर है।'
इस मन में बहता जब ऐसा,
ज्ञान-मयी निर्झर है।
पर परणतियें, शल्ये तब सब
सहमा ढह जातीं हैं।
निज स्वरूप की ही तब फिर फिर
झांकी दिखलाती हैं।

अवम्भं न चवन्तं,
विकहा विनस्य विषय मुक्कं च।
ध्यान सुद्दाव सु समयं,
समय सहकार ममल अन्मोय।

पंद्रह

परमब्रह्म में जब चंचल मन,
निश्चल हो रम जाता।
तब न वहां पर अन्य; किन्तु,
निज आत्म स्वरूप दिखाता।
चारों विकथा, व्यसन, विषय
उस क्षण छुप-से जाते हैं।
परमब्रह्म में रत मन होता,
मल सब धुल जाते हैं।

जिन वयनं च सहाव,
जिनय मिथ्यात कषाय कम्मानं।
अप्पा सुद्धप्पानं,
परमप्पा ममल दसए सुद्ध।

सोलह

जिन-मुख-सरसीरुह की है यह,
ऐसी प्रिय जिन-वाणी।
मल, मिथ्यात्व, कषाये सबको,
पल में हरती ज्ञानी!
आत्म तत्व ही शुद्ध तत्व है
जिन प्रभु कहते भाई।
आत्म-मुकुर में ही बस तुमको,
देंगे प्रभु दिखलाई।

जिन दिष्टि इष्टि संसुद्धं,
इस्टं संजोय विगत अनिष्टं।
इस्टं च इस्ट रूवं,
ममल सहावेन कम्म संषिपनं।

सत्रह

जिनवाणी की श्रद्धा हिय में,
शुचि पावनता लाती।
विरह अनिष्टों से, इष्टों से,
वह संयोग कराती।
त्रिभुवन में सब से मृदुतम बस,
आत्म-मनन की प्याली।
आत्म-मनन से ही टूटेगी,
कर्म-कमठ की जाली।

अन्यानं नहि दिट्ठं,
न्यान सहावेन अन्मोय ममलं च ।
न्यानंतरं न दिट्ठं,
पर पर्जाव दिट्ठि अंतरं सहसा ।

अठारह

क्षायिक सम्यग्दृष्टी में अज्ञान,
नहीं रहता है ।
ज्ञान-तरंगों पर चढ़, नित वह,
शिव-सुख मे बहता है ।
आतम ज्ञान मे अंतर उसके,
नेक नहीं दिखलाता ।
भेद-भाव, पर परणतियों में,
पर सहसा आ जाता ।

अप्पा अप्प सहावं,
अप्प सुद्धप्प ममल परमप्पा ।
परम सरूव रूवं,
रूवं विगतं च ममल न्यानं च ।

उन्नीस

आत्म-द्रव्य ही है परमोत्तम,
शुद्ध स्वरूप हमारा ।
वह ही है शुद्धात्म, वही है,
परमब्रह्म प्रभु प्यारा ।
त्रिभुवन में चेतन-सा उत्तम,
रूप न और कहीं है ।
है यह ज्ञानाकार, अन्यतम
इसका रूप नहीं है ।

ममलं ममल सरूवं,
न्यान विन्यान न्यान सहकारं।
जिन उत्तं जिन वयनं,
जिन सहकारेन मुक्ति गमनं च।

बीस

जिनके अमृत-वचन मोक्ष-से,
मृदु फल के दायक हैं।
हस्तमलकवत् जो त्रिभुवन के
घट घट के ज्ञायक हैं।
ऐसे जिन प्रभु भी यह कहते,
चेतन अविकारी है।
आत्म-ज्ञान ही पच ज्ञान के,
पथ मे सहकारी है।

षट्काई जीवानां,
क्रिया सहकार ममल भावेन।
सत्तु जीव, सभावं,
कृपा सह ममल कलिष्ट जीवानं।

इक्कीस

अनिल, अनल, जल, धरणि, वनस्पति,
औ त्रस तन में ज्ञानी !
पाये जाते हैं वसुधा पर,
सब संसारी प्राणी।
इन जीवों पर दया भाव ही,
समता भाव कहाता।
चेतन का यह चिर-स्वभाव, यह,
भाव–विशुद्धि बढ़ाता।

एकांत विभ्रिय न दिट्ठं,
मध्यस्थं ममल सुद्ध सब्भावं।
सुद्ध सहाव उत्तं,
ममल दिट्ठी च कम्म षिपनं च।

बाईस

ज्ञानी जन एकान्त विपर्यय,
भाव न मन में लाते।
स्याद्वाद-नय पर चढ़ कर वे,
मध्य — भाव अपनाते।
भावों में शुचिता आना ही,
कर्मों का जाना है।
कर्मों का जाना ही भाई!
शिव-पथ को पाना है।

सत्व क्लिए जीवा,
अन्मोय सहकार दुग्गए गमनं ।
जे विरोह सभावं,
संसारे सरनि दुषवीयम्मि ।

तेईस

जो नर संसारी जीवों को,
पीड़ा पहुँचाते हैं ।
या पर से दुख पहुँचा उनको,
जो अति सुख पाते हैं ।
ऐसे दुष्टों का होता बस,
नर्क-स्थल में डेरा ।
असम भाव जिसके, उसको बस,
मिलता नर्क बसेरा ।

न्यान सहाव सु समयं,
अन्मोयं ममल न्यान सहकारं।
न्यानं न्यान सरूवं,
ममलं अन्मोय' सिद्धि सम्पत्तं।

चौबीस

आत्म-सरोवर में रमना हो,
ज्ञान–स्वरूप है भाई !
आत्म ज्ञान ही से मिलता है,
केवल ज्ञान सुहाई।
आत्म ज्ञान ही से पाता नर,
पद अरहन्त सुखारी।
आत्म ज्ञान के बल पर ही नर,
बनते शिव—अधिकारी।

इष्ट च परम इष्टं,
इष्ट अन्मोय विगत अनिष्टं'
पर पर्जायं त्रिलयं,
न्यान सैहावेन कम्म जिनियं च।

पच्चीस

त्रिभुवन मे सर्वोत्कृष्ट बस,
इस चेतन का पद है।
निज स्वरूप में रमना ही बस,
अहित-विगत सुख-प्रद है।
आत्म मनन से कर्मों की सब.
बेड़ी कट जाती है।
इसके सम्मुख पर पर्यायें,
पास नहीं आती हैं।

जिन वयन सुद्ध सुद्धं,
अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं ।
ममलं ममल सरूवं,
जं रयनं रयन सरूब संमिलियं ।

छब्बीस

श्री जिनवाणी निश्चयनय का,
प्रिय सन्देश सुनाती ।
त्रिभुवनतल में उससी पावन,
वस्तु न और लखाती ।
ज्ञान-सिन्धु आतम का भव्यों !
रूप परम पावन है ।
आत्म-मनन से ही मिलता बस,
रत्नत्रय-सा धन है ।

सेष्टं च गुन उवचनं,
सेष्टं सहकार कम्म संषिपनं ।
सेष्टं च इष्ट कमलं,
कमलं सिरि कमल भाव ममलंच ।

सत्ताईस

जगता है शुद्धोपयोग गुण,
आत्म - मनन से भाई ।
जिसके बल से गल जाते सब,
कर्म महा दुखदाई ।
कर्म काट, अरहन्त महापद,
आत्म-कमल पाता है ।
और यही निज-रूप रमण फिर,
शिवपुर दिखलाता है ।

जिन वयनं सहकारं,
मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च ।
विगतं विषय कषायं,
न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च ।

अट्ठाईस

भव-सागर अति दुर्गम, दुस्तर,
थाह न इसकी प्राणी !
इसको तरने में समर्थ बस,
एक महा जिन—वाणी ।
जिन—वाणी कुज्ञान, कषायें,
शल्य, विषय क्षय करती ।
निश्चयनय का गीत सुना यह,
सब कर्मों को हरती ।

कमलं कमल सहावं,
षट्कमलं तिअर्थ ममल आनन्दं।
दर्सन न्यान सरूवं,
चरनं अन्मोय कम्म सषिपनं।

उनतीस

आत्म-कमल अरहन्त रूप में,
जिस क्षण मुसकाता है।
उसक्षणही, षटगुण, त्रिरत्न-दल
उसको विकसाता है।
दर्शन-ज्ञान-सरोवर में तब,
आत्म, रमण करता है।
और अघातिय कर्म नाश, वह
शिव में पग धरता है।

संसार सरनि नहु दिट्ठं,
नहु दिट्ठं समल पर्जाय सभावं।
न्यानं कमल सहावं,
न्यान विन्यान ममल अन्मोयं।

तीस

सिद्ध न संसारी जीवों—से
भव भव गोते खावें।
अशुचि,मलिन परिणतियें उनके,
पास न जाने पावें।
उनके उर में कमल-सदृश बस,
केवल—ज्ञान विहँसता।
शुद्ध ज्ञान,सत,चित,सुखहीरस,
उनके हिय में बसता।

जिन उत्तं सद्दहनं,
अप्पा परमप्प सुद्ध ममलं च।
परमप्पा उवलद्धं,
धम्म सुभावेन कम्म विलयन्ती।

इकतीस

'जिणो! अपना आत्म देव ही,
है जग का परमेश्वर।
बरसाते इस वाक्य-सुधा को,
तारण तरण जिनेश्वर।'
जो जन, जिन-वच पर श्रद्धाकर,
बनता आत्म-पुजारी।
कर्म काट, भवसागर तर वह,
बनता मोक्ष—बिहारी।

जिन दिष्ट उत्त सुद्ध,
जिनयति कम्मान तिविह जोएन।
न्यानं अन्मोय ममलं,
ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च।

बत्तीस

जैसा जिन ने देखा, जैसा
वचन---अमिय बरसाया।
वैसा ही शुद्धात्म तत्व का,
मैंने रूप दिखाया।
त्रिविधि योग से सतत करेंगे,
जो आतम–आराधन।
कर्म जीत, वे ज्ञानानन्द हो,
पायेंगे शिव–पावन।

श्रीकमलाकर पाठक द्वारा कर्मवीर प्रेस, जबलपुर में मुद्रित।